

प्रथम संस्करण १०००

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्री रामप्रताप शान्त्री

## प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'मीराबाई' के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रकाशन है। इससे पूर्व श्री पद्मशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीराबाई की पदावली' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। 'मीराबाई' की कृति ने हिन्दी साहित्य को किस प्रकार रस-सिक्त किया है, यह साहित्यानुसंधान से अविदित नहीं है। यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है १. (जीवन-रिक्त) २. (आलोचना)। प्रथम खण्ड में मीराबाई के जीवन के सम्बन्ध अनुसन्धानपूर्वक अनेक जातव्य वार्ता का परिचय कराया गया है और द्वितीय खण्ड में मीराबाई की रचनाओं के साथ भक्तियुग में मांग, उसकी प्रेम-भना और उसकी कान्य-फला के सम्बन्ध में परिमार्जित समीक्षा देकर हमारे ज्ञान-लेखक श्री डा० श्रीकृष्णलाल एम. ए., टी. फिल. ने इस अभक्तियुग, वीलिए आख्यायिकात्मक काल में प्राचीन भक्ति परम्परा का नमस्कार कराया है।

पुस्तक की उपादेयता तो विश्व पाठकों की सम्मति पर ही निर्भर है। किन्तु हम इतना अग्रगण्य कहेंगे कि सम्मेलन की मध्यमा और उत्तमा परीक्षा के परिणामों के ज्ञान-वर्द्धन में यह पुस्तक परम सहायक होगी।



स्वर्गीया स्नेहमयी जननी  
की पुण्य स्मृति में—

श्रीकृष्ण लाल



## दो शब्द

‘जीवावाँ’ के प्रणयन का कार्य मन् १९४३ में ही गुरुवर डा० गमकुमार वर्मा के सुझाव से प्रारम्भ हो गया था, परन्तु बीच-बीच में कितनी ही बाधाओं के कारण, कई वर्षों बाद वह प्रकाशित हो रहा है। उन पाच-छ. वर्षों में मुझे न जाने कितनी प्रेरणाएँ, कितने परामर्श और कितनी सहायता प्राप्त हुई, उन सबका उल्लेख आवश्यक नहीं है, फिर भी अपने हृदय का भाग स्मरण करने के तबचा से दो एक शब्द लिख देना अनुचित नहीं जान पड़ता। मेरे श्रद्धास्वपुत्र आचार्य डाक्टर नीरन्ध्र वर्मा ने समय-समय पर जो प्रोत्साहन और प्रमूल्य परामर्श दिए, उनके बिना सम्भवतः उस प्रथम की रचना ही न हो पाती। उनकी कृपा और स्नेह का मैं जितना अग्रयस्त हो गया हूँ कि उनके लिए आभार-प्रदर्शन सम्भव नहीं जान पड़ता। मुहूर्त्तवर् डा० माता-प्रसाद गुप्त ने अपना अमूल्य समय दे पाठलिपि को भली भाँति पढ़कर कुछ सुझाव दिए थे जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री नरेश कुमार मेहता, एम० ए०, ने ‘वृत्त-साधक दोहन’ के गुजगती अन्तर्ग में छपे मोरों के पद्यों में प्रतिलिपि नागरी अक्षरों में कर लेनी सहायता की जिसके लिए मैं धन्यवाद के पात्र हूँ। जिन जिन लोगों को भी कृतियों में उस प्रथम के प्रणयन में सहायता ली गई है, उनका मैं आभारी हूँ। अतः मैं अपने प्रिय मित्रों में प्रथम आचार्य नारायणचरण और ज्योतिष्य सम्मेलन, प्रयाग के नारायण चरण, श्री ज्योतिषनाथ मिश्र ‘निर्मा’ को अनेक धन्यवाद देता हूँ जिनके अपने प्रसाहन की व्यवस्था की।

# विषय-सूची

## प्रथम खंड

### ( जीवन-चरित )

विषय	पृ०
पहला अध्याय—प्रवेश	३
दूसरा अध्याय—आधार और सामग्री	८
तीसरा अध्याय—मीराँवाई की जीवन सम्बन्धी तिथियाँ	५५
चौथा अध्याय—संस्कार और दीक्षा	६२
पाँचवाँ अध्याय—जीवन वृत्त	६८
उपसंहार	७४

## द्वितीय खंड

### ( रचनाएँ तथा आलोचना )

पहला अध्याय—मीराँवाई की रचनाएँ	७६
दूसरा अध्याय—भक्ति-युग और मीराँ	८३
तीसरा अध्याय—मीराँ का काव्य-विषय—भक्ति	१२३
चौथा अध्याय—मीराँ की प्रेम-भावना	१४८
पाँचवाँ अध्याय—मीराँ की काव्य-कला	१६४
उपसंहार	१७६

जीवनी खंड



# पहला अध्याय

## प्रवेश

१

विक्रम की पट्टर्धा, सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में भक्तिधर्म की प्रधानता थी। कितनी ही दृष्टियों में उस भक्तियुग का विशेष महत्व है और इस महत्वपूर्ण युग में भी मोगोंवाड़े का विशिष्ट स्थान है। यह राजपूतों की वीरता का युग था—महाराणा सागा और प्रताप, वीरश्रेष्ठ जयमल प्रोग पुता, गव जोधा जी और मालदेव जैसे मानवनी वीरों की कीर्ति में नाग राजपूताना गूज रहा था—और मोग इस युग के गणवाकुरे राजौर गव जोधा जी का प्रपीत्री, वीर जयमल को वहिन तथा मीरौंदियों के मूर्य महागंगा सागा ही ज्येष्ठ पुत्रवधू थी, यह कवार, दादू, नानक, रैदान तथा नग्मी मेहता जैसे श्वग्गयगण भक्तों का युग था और मोग एक महान भक्त था, यह एक श्रवताग युग था जब गोसाईं तुलसीदास आदि कवि मर्दि वाल्मीकि के, गीरग महाप्रभु श्री चैतन्यदेव भगवान् कृष्ण के, मगन्मा रगिदास श्री ललिता सखा के और गोसाईं हिन हरिधर भगवान् मुग्लौर की मुग्लों के श्रवताग पमके जाते थे और मीग द्वार युग की ब्रज-गोषों का श्रवताग प्रसिद्ध था यह रगिदास, नाननेन, वैज वावरे तथा सुदान जैसे गायकों का युग था और मोगवाड़े एक श्रलीचिक गानिका थी; यह सुदान, तुलसीदास, पय्यापति तथा रुदान जैसे मशकावयों का युग था और मोगों एक जन्मजात कवि थी। गगमग वां हि मोगवाड़े उन युग का गौरव बढ़ाने वाली एक महान श्रवता थी।

आलवारा के पावन कठ से निकली हुई भक्ति-धारा श्री रामानुज, म विष्णुस्वामी और निम्बार्क जैसे आचार्यों की प्रतिभा-सरस्वती के संयोग एक बाढ़-सी उमड़ कर दक्षिण भारत को रसमय ऋग्ती हुई उत्तर की बढ़ी और कुछ ही समय में बंगाल और मध्यदेश भी इस भक्ति-धार प्रवाह से रसमय हो उठा। काशी में स्वामी रामानंद अपनी द्वादश शि मडली के साथ 'जात-पाँत पूछें नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि को हो का प्रचार कर रहे थे और पावन-भूमि ब्रज में एक और महाप्रभु बल्लभान अपने शिष्यों के साथ बाल-गोपाल-भक्ति का प्रसार कर रहे थे, दूसरी चैतन्यदेव के प्रिय शिष्य रूप, सनातन और जीव गोस्वामी माधुर्य भाव भक्ति-भावना से रस की धारा बहा रहे थे। दैवयोग से यह समय भी भ धर्म के प्रसार में विशेष सहायक प्रमाणित हुआ—विजेता यवनों से पददा और पीड़ित निगश हिन्दू जनता के लिये ईश्वर की भक्ति के अतिरिक्त चारा ही क्या था ? परतु यह भक्ति-धारा राजपूताने की मरुभूमि में अ मार्ग खोजने में असमर्थ थी। वहाँ अब भी तलवार के पानी और रक्त के की होली खेली जाती थी, वहाँ अब भी मुडमाली को मुडमाल चढाया ज था। राम और कृष्ण के स्थान पर वहाँ माले और बछ्छी की पूजा होती थी, २ और यमुना के स्थान पर वहाँ के वीर पुजारी 'शोणित के स्रोत' में स्नान अपना जीवन कृतार्थ करते थे और 'सुने रे निर्बल के बल राम' के स्थान पर

तन तलवारँ तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव ।

आलाँ वावाँ ऊठसी, छिन इक ठहर नकीव ॥<sup>१</sup>

के गीत गाये जाते थे। सच तो यह है कि भक्ति-धर्म की अग्नि-परीक्ष लिये राजस्थान की मरुभूमि ने जौहर की आग जला रक्खी थी। परतु

<sup>१</sup> इस वीर का शरीर तलवार के धारों में डकड़े-डकड़े हो गया है और तिल पर मिना हुआ है। हे चारण ! तुम धोटी डेर के लिए अपनी वीर बाणी बढ करो, नो यह वीर गीले धारों में उठ कर अभी फिर रण के लिए चला जायगा ।

ग जहो प्रचंडतम रूप से प्रज्वलित हो गयी थी वहीं अचानक भक्ति-धर्म का ग पहरा उठा। पत्थर पर दूब जमने की जो कहावत प्रसिद्ध है उसे चरितार्थ देख लोगो के आश्चर्य की सीमा न गयी। अस्मी बाबा के चिह्न जिमकी रता के अद्भुत साक्षी थे उन्ही राणा सागा की प्रचंड तलवार के ठीक नीचे ही र्भक्ति की एक अमर बेल पल्लवित हो उठी। कौन जानता था कि गड्गा रता के सबसे बड़े पुरोहित महाराणा सागा की पुत्रवधू और उसके (खट्गा रता के) सबसे बड़े पुजारी वीरश्रेष्ठ जयमल की वहन अचानक ही गा उठेगी।

श्री गिरधर आगे नाचूंगी ॥ टेक ॥

नाच नाच पिव गमिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कू जाचूंगी।

तु सावर के गग में रेंगी हुई उस प्रेम-प्रतिमा की स्वर-लहरी ने केवल र्भूमि राजस्थान को ही नहीं, सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम भारत को अपनी पावन केत-भाग से अभिमिचित कर दिया।

राजस्थान में जिम धर्म और मस्कृति का प्रभाव था वह तलवार और त-बाग की कटोर भित्ति पर स्थित था, परंतु भक्ति-धर्म की नींव में मानव-व्य की कोमल भावनाये निहित थी। र्मीलिये बगाल की भावुक प्रकृति भक्ति-धर्म का पूर्ण स्वागत किया और वही इस कामिनी-जनोचित धर्म की र्ण प्रतिष्ठा हुई। बगाल के पुरुष—चैतन्य और चंडीदास—में गधा-भाव की र्णता मिलती है। दूसरी ओर राजस्थान की स्त्रियाँ तक—कर्मदेवी, जवाहर ई र्त्वादि—तलवार लेकर रक्त की नदियाँ बहाया करती थी। इसी वैपम्य कारण बगाल में राजपूत धर्म की प्रतिष्ठा न हो सकी और राजस्थान भक्ति-धर्म कभी पल्लवित न हो सका। परंतु राजस्थान के जलवायु में रस होकर वहा की मस्कृति और धर्म में पलकर, पुरुषोचित भावना के तावरण से रक्षर भी मीरो ने माधुर्य भाव की भक्ति का जो चरम विज्ञान र्शित किया, वह मानव जाति के र्निदान में एक अद्भुत घटना है। गाल जैसे सुदूर प्रांत में आकर जिम रस, ननानन और जीव सोरामी अत्रभूमि में माधुर्य भाव की रस-भाग उमड़ा दी थी, उन्ट भी मीरर । भक्ति भावना के सम्पुर्ण नत मन्तक होना पटा था। मीरर और जीव

गोस्वामी के सम्बन्ध में जा जनश्रुति<sup>१</sup> प्रसिद्ध है, वह सम्भव है वास्तव सत्य न भी हो, परन्तु रूपक के रूप में उसकी सत्यता असदिग्ध स्वरूपादि कविया ने भ्रमरगीत के द्वारा ज्ञान और योग से भक्ति, जो श्रेष्ठता प्रमाणित करने का प्रयास किया, उसे साधारण जनता योगी और महाजानी जीव गोस्वामी को भक्त मीरों के सामने निरुक्त दिखाकर इस जनश्रुति द्वारा अत्यन्त सरल रीति से प्रमाणित कर दिया मीरों भक्ति-भावना की प्रतीक हैं, उनका जीवन ही भक्ति-साधना है और उनकी कविता में उसकी चरम सिद्धि है।

## ३

मीराँवाई का इतिहास और जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य महाकविया व भक्ति एकदम अनिश्चित नहीं है। यह सच है कि हम निश्चित रूप यह नहीं कह सकते कि मीराँवाई किस सवत् में अवतरित हुई, अथवा क और कैसे उन्होंने यह नश्वर देह छोड़ा परन्तु यही तो सब कुछ जान नहीं है। जो जानना आवश्यक है वह तो यह है कि वे किस युग, किस वंश किस वातावरण में अवतरित हुई उनकी शिक्षा और दीक्षा किस प्रकार की हुई, उनके जीवन में कितने सन्तर्पण किस रूप में उपस्थित हुए और उन सन्तर्पणों को उन्होंने किस रूप में कितनी सफलता के साथ भेला मीरों के सम्बन्ध में इन सभी आवश्यक बातों का निश्चित ज्ञान प्राप्त करना कुछ कठिन नहीं है। दैवयोग से वे राजपूताने के एक प्रसिद्ध राजकुल उत्पन्न हुई और एक अतिप्रसिद्ध राजकुल में उनका विवाह हुआ। राजस्थान

१—कहा जाता है कि मीरा वृन्दावन में भक्त-शिरोमणि जीव गोस्वामी के दर्श के लिए गई थी। गोस्वामी जी मन्त्रे साधु थे और स्त्रियों की छाया तक स भाग दे, इसलिए मन्त्र में ही कहला भेजा कि हम स्त्रियों से नहा मिलत। इसपर मीराँव ने उत्तर दिया कि मैं तो समझती था वृन्दावन में धाकृष्ण जी ही एक मात्र पुरुष। परन्तु यहाँ आकर जान पड़ा कि उनका एक और प्रतिद्वंदी पैदा हो गया है। मीरा का ऐसा माधुर्य-भाव से युक्त प्रेमपूर्ण उत्तर सुनकर जीव गोस्वामी नगे पैर बाहर निकाले और बड़े ही प्रेम से मीराँवाई से मिले।

के इतिहास में उनके पितृकुल और श्वसुर-कुल की वीरता स्वर्ण अक्षरों में अंकित है; उनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-सघर्ष का इतिहास उनके पदों में मिलता है, उनके जीवन के सौन्दर्य, सफलता और विजय का इतिहास साहित्य और जनश्रुतियों में बिखरा पटा है। यदि थोड़ी कल्पना और अनुमान का सहारा लिया जाय तो मीरोवाई का इतिहास और जीवन-वृत्त निश्चित रूप से उपस्थित किया जा सकता है। अनुमान शब्द सुनकर चौंकने की आवश्यकता नहीं। जहाँ सत्य की खोज के लिए अन्य कोई साधन अप्राप्य है, वहाँ अनुमान ही एकमात्र सहारा है।

## दूसरा अध्याय

### आधार और सामग्री

१

अन.साध्य—मीरों के जीवन-वृत्त-विचार के लिए, सबसे पहले, उनके नाम से प्रसिद्ध पदों की ओर ध्यान जाता है। मीरों की रचनाओं में ऐसे पद पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं जिनमें उनकी जीवन-सम्बन्धी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता है। परन्तु उनकी प्रामाणिकता अस्पष्ट नहीं है। उन पदों में प्रधान रूप में दो विषयों का निर्देश मिलता है—एक तो सत रैदास तथा उनके शिष्यों के सत्संग का प्रभाव और मीरों की वैराग्य-प्रवृत्ति, दूसरे राणा द्वारा किए गए असफल अत्याचारों का वर्णन। काव्य-वस्तु की दृष्टि से विचार करने पर उन पदों का मीरों द्वारा लिखा जाना असम्भव नहीं है। गोसाईं तुलसीदास ने भी कवितावली और विनयपत्रिका में ऐसे छन्द और पद पर्याप्त संख्या में लिखे हैं जिनमें उनकी जीवन-सम्बन्धी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता है और उनकी प्रामाणिकता में किसी को भी संदेह नहीं है। परन्तु मीरों के इन पदों के सम्बन्ध में संदेह होना स्वाभाविक है। कुछ पद तो ऐसे हैं जो मीरों के लिखे हो ही नहीं सकते। एक उदाहरण लीजिए।

म्हारे सिर पर सालिगगाम, राणा जी म्हारो काई करसी ॥टेक॥  
मीरा सुँ राणा ने कही रे, सुण मीरा मोरी वात ।  
माधो की मगत छोड दे रे, मखियाँ सब सकुचात ॥ १ ॥  
मीरा ने सुनया कही रे, सुन राणा जी वात ।  
माध तो भाई वाप हमारे, सखियाँ क्यूँ धररात ॥ २ ॥  
जहर का प्याला मेजिया रे, दीजे मीरा हाथ ।  
अमृत कग्के पी गई रे, भली करे दीनानाथ ॥ ३ ॥

मीरा ग्याला पी लिया रे, बोली दोउ कर जार ।  
 तै तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो ओर ॥ ४ ॥  
 आधे जोहड<sup>१</sup> कीच है रे, आधे जोहड हाँज ।  
 आधे मीरा एकली रे, आधे गणा की फौज ॥ ५ ॥  
 काम क्रोध को डाल के रे, सील लिये हथियार ।  
 जीती मीरा एकली रे, हारी राणा की धार<sup>२</sup> ॥ ६ ॥  
 काचगिरी<sup>३</sup> का चौतरा रे, बैठे साध पचाम ।  
 जिनमें मीरा ऐसी दमके, लख तारंग में परकाम ॥ ७ ॥

[ मीरा की शब्दावला, वेन्वेडियर प्रेम मङ्कण पृ० ४०-४१ ]

इस पद की ध्वनि कुछ ऐसी है जो इसे मीरों-रचित होने में सदेह उप-  
 स्थित करती है। विशेषकर अतिम दो चरण 'काचगिरी का चौतरा रे'  
 इत्यादि तो मीरा की लेखनी से उद्भूत हो ही नहीं सकते। इसी प्रकार मीरों  
 तथा उनकी मास और ननद की वातचीन जिन पदों में दी गई है, उनके  
 मीरों-रचित होने में पूर्ण संदेह है। एक उदाहरण देखिए :

[ ऊदा ] भार्भी मीरा कुल ने लगाई गाल<sup>४</sup> ।

इंटर गढ़ का आया जी ओलवा<sup>५</sup> ।

[ मीरा ] वाई ऊदा थारे म्हारे नातो नाति,

नामा बस्या का आया जी ओलवा<sup>६</sup> ॥१॥

[ ऊदा ] भार्भी मीरा का सावा का मंग निवार,

मारो महर थोरी निन्दा करे ।

[ मीरा ] वाई ऊदा करे तो पटगा कव्य मारो,

मन लागो रमना राम से ॥२॥

[ वही पृ० ३७-३८ ]

ये पद तो नौटन्धियों के पत्रवद वार्तालाप जैने जान पटते हैं। इनका मीरों  
 द्वारा लिखा जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं जान पड़ता ।

१ ग्याला ग्याला भाव । २ पीया । ३ काचगिरी । ४ लाल । ५ उदाहरण ।  
 ६ तुम्हारे उस प्रकार का सम्बन्ध उदाहरण जिला ।

अतःसाक्ष्य के इन पदों में एक विशेष बात यह है कि इनमें एक ही वाकितने ही पदों में कितनी ही तरह से कही गई है। राणा के विषय का प्याल भेजने का उल्लेख लगभग डेढ़ दर्जन पदों में मिलता है। इसी प्रकार सतगुरु के रूप में रैदास का उल्लेख भी लगभग आधे दर्जन पदों में है। इस पुनरुक्ति से दो ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—या तो मीरा के पास विषय का इतना अभाव था कि वे एक ही बात को अनेक प्रकार से कहने को बाध्य थीं, अथवा उन्होंने दो ही एक पद इस विषय पर लिखे होंगे, बाद में अन्य कवियों ने जाने किम भावना से प्रेरित हो इसी विषय पर कितने ही पद कुछ परिवर्तित और परिवर्धन के साथ मीरा के नाम से लिख कर प्रचलित करा दिए। पिछले सम्भावना ही अधिक जान पड़ती है क्योंकि यह विषय कुछ ऐसा है जिस पर विषयाभाव होने पर भी मीरा ने पुनरुक्ति न की होगी। फिर इन पदों में कहीं कहीं 'साप-पिटारा' भेजने तथा 'सूल-सेज' पर सुलाने का भी उल्लेख मिलता है। यथा

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥ टेक ॥  
 साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय ॥  
 न्हाय धोय जत्र देखण लागी, सालिगराम गई पाय ॥  
 जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ॥  
 न्हाय धोय जत्र पीवण लागी, हो अमर अँचाय ॥  
 सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ।  
 साँक भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल विछाय ॥

[ मीरा की शब्दावली बेलवेटियर प्रेम नमस्करण पृ० ६४ ]

और भी राणा जी म्हॉरी प्रीत पुरवली मैं क्या करूँ ॥ टेक ॥

× × × × × ×

विषय का प्याला भेजिया जी जावो मीरा पास ।

कर चरणामृत पी गई, म्हॉरे राम जी के विस्वास ॥ २ ॥

× × × × × ×

पयो<sup>१</sup> वासक<sup>२</sup> भेजिया जी. ये है चन्दन हाग ।

नाग गले में पहिगिया, म्हारो महला भयो उजार ॥ ५ ॥

[ मीरा की श्र. १३ली, वैभवैलियर प्रेम सम्करण पृ० १ ]

परन्तु 'माप पिटाग तथा 'सल सेज' का उल्लेख न तो नाभादास के छप्पर हैं और न प्रियादास के कवित्तों में । नाभादास ने केवल एक ही छप्पर के सम्बन्ध में लिखा था, इसलिए सम्भव है कि स्थानाभाव के कारण वे इन उल्लेख न कर पाए हों, परन्तु प्रियादास को तो स्थान का अभाव न था । उन तो दश कवित्तों में कितनी ही बातों का उल्लेख किया है और यदि उस समय में मीरा के पास 'माप पिटाग' भेजने तथा उनको 'सल सेज पर सुत की रुखा का प्रचार हाता अथवा उपर्युक्त दोनों पद मीरा के ही लिखे होते वे इनका उल्लेख करना कर्मा न भूलते । फिर शृंगारमिह-गचत भक्तमा में जो विविध जनश्रुतियों का अत्यधिक विस्तार मिलता है उसमें भी 'पिटाग' और 'सल सेज' का उल्लेख नहीं है । इसमें यह बात निश्चित रूप प्रमाणित हो जाती है कि उपर्युक्त दोनों पद मीरा की रचना नहीं हैं, वरन् उनकी मृत्यु के बहुत दिना पश्चात् प्रियादास के समय के उपगत जन भक्त के सम्बन्ध में नए-नए कथा-प्रसंगों और गीत तथा पदों की सृष्टि हो गयी थी, समय उनके किसी भक्त ने इन पदों की रचना करके जनता में प्रचलित दिया जो कालान्तर में मीरा-गचिन माने जाने लगे । फिर उपर्युक्त दोनों में पहले में पिटाग का नाप शालिग्राम की मूर्ति बन जाता है परन्तु दूसरे वासक ( वासुकि नाग ) चन्दन हाग के रूप में परिदलित होकर महल उजाला करता है । ये दोनों परम्पर विरोधी बात नश्य नहीं हो सकती । एक तो प्रबन्ध ही असत्य है और अधिक सम्भव है कि दोनों ही असत्य सत्य तो यह है कि ये दोनों ही पद मीरा के लिखे नहीं हैं ।

मध्यमार्गीय उत्तर भाग में प्रस्तुत भक्तों और महापुत्रों की स्मृति वृत्त गीता, तथा-नामों और प्रसंगों तथा रूपों द्वारा चित्रित रंगी चित्तों

कवि और गायक गीतों और पदों में उन महात्माओं की कीर्ति गाते फिरते थे; वृद्धगण उनके सम्बन्ध में अनेक कथा और प्रसंग उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहते थे और मगीत अथवा नौटकियों के छद्मवद्द वार्तालापों में उनके जीवन के प्रमुख प्रसंग रूपकों के रूप में प्रदर्शित किए जाते थे। गोपीचन्द, पूरन भक्त, और हकीकत राय के रूपक पञ्जाब में अब तक प्रचलित हैं। सयुक्त प्रात के पूर्वी भाग में अब तक जोगी और फकीर गोपीचन्द और भरथरी के गीत गा-गा कर भीख मांगते हैं। राजस्थान में मीरावाँई के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कितने ही रूपक प्रचलित रहे होंगे जो पवों और त्योहारों के अवसर पर जनता के सामने खेले जाते होंगे। साथ ही रमते योगी और फकीर, गायक और चाणू, उनके सम्बन्ध में विविध प्रकार के गीत और पद गा-गा कर जनता को मुग्ध करते रहे होंगे। स्त्रियाँ में मीराँ का विशेष रूप से अधिक प्रचार था। कालांतर में कितने ही गीत और पद, रूपकों के कितने ही छद्मवद्द वार्तालाप मीरा के नाम से जनता में प्रचार पा गए होंगे। यह कोरा अनुमान ही नहीं है, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण 'साहित्य-रत्नाकर' नामक सग्रह-ग्रन्थ में मिलता है। गुजरात के श्री कहान जी धर्मसिंह ने 'साहित्य-रत्नाकर' नामक दो जिल्दों में हिन्दी की प्राचीन कविताओं का सग्रह प्रकाशित किया जिसकी तृतीयावृत्ति १६२६ ई० में हुई। इसके प्रथम भाग में पृ० ४१७-१८ पर मीरावाँई के नाम से तीन छन्द, १ दोहा और दो कवित्त दिए गए हैं जिनमें दोनों कवित्त द्वावें के प्रसिद्ध कवि देव जी की रचनाएँ हैं जो सम्भवतः मीराँ की प्रशंसा में लिखे गये थे। देव कवि के नाम पर भी कितने कवित्त और सबैया उसमें सग्रहीत हैं जिससे जान पड़ता है कि देव-रचित इन कवित्तों को सग्रहकर्ता मीराँ-रचित ही समझता था। ठीक इसी प्रकार की भूलों मीराँ के इन पदों के सम्बन्ध में भी हुई हैं। बेलवेडियर प्रेम में प्रकाशित 'मीरावाँई की शब्दावली' में 'मीरावाँई और कुटुम्बियों की कथा मुनी के अतर्गत जो छद्मवद्द वार्तालाप मिलते हैं, वे सम्भवतः मीराँवाँई के जीवन सम्बन्धी रूपक और नौटकियों के अवशेष हैं और अन्य पद भी इसी प्रकार भूल में उनकी रचना में स्थान पा गए हैं।

ग्रन्थ, जिन पदों में मीराँ की जीवन-सम्बन्धी बातों का स्पष्ट निदेश मिलता

है, अतः साक्ष्य के वे पद अधिकांश मीरा की रचनाएँ नहीं हैं। परन्तु प्रकार के सभी पदों को महत्सा अप्रामाणिक मानना भी ठीक नहीं है कुछ पद तो मीरा के ही लिखे जान पड़ते हैं, परन्तु निश्चित रूप में कुछ क नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए देखिए।

गणा जी मैं तो गाँवों का गुण गात्याँ ॥६॥

चरणामृत का नेम हमारे, नित उठ दरसन जात्या ॥७॥

दरि मन्दिर में निरत रुगस्यो, धूपरिया घमकान्या ॥८॥

गम नाम का जहाज नलास्या. भवसागर तर जान्या ॥९॥

यह ससार बाड का काटा. ज्या सगत नहि जास्या ॥१०॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गात्याँ ॥११॥

[ मीराजी का अष्टावक्रा वल्लभोदय नेम मन्त्र १०६ ]

यह पद मीरा का ही लिखा जान पड़ता है। इन प्रकार के कुछ सम्भवतः मीरा ने लिखे होंगे परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी कृति बढ़ने लगी, त्यों उनके सम्बन्ध में नई-नई जनश्रुतियों का प्रचार बढ़ने लगा और उनकी रूप मीरा के नाम ने नए-नए पदों का प्रचार भी होने लग गया। इन नए से मीरा के पदों को छुट निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अर्थ है अतः इन पदों को अतः साक्ष्य के रूप में स्वीकार करना ठीक नहीं है, कि इनसे यदि साक्ष्य का उपयोग तो किया ही जा सकता है और यही उपयुक्त भी है।

अतः साक्ष्य के इन पदों के अतिरिक्त शेष अगणित पदों में मीरा की भावना का प्रदग्धुत प्रवाह मिलता है जिनमें उनकी जीवन-सन्दर्भों का निदर्शन नहीं है, फिर भी उन गैर पदों ने कवि के जीवन पर पराप्त प्र पड़ता है। इनमें कुछ पद तो ऐसे भी हैं जिनमें कवि ने अपनी भक्ति-न के आदेश में अपने जीवन की ओर भी संकेत किया है। यथा -

तेरो कोट नहि रोकणहार मगन होत मीरा चली। टेक

लाज. सरग तुल की मजादा मिर ने दूर करी।

मान अपमान दोऊ धर पटके निवसी हू जान गली ॥११॥

× ×

× ×

× ×

सेज सुखमणा मीरा सोहै, सुभ है आज घरी ।

तुम जाओ राणा घर अपणै, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥४॥

[ मीरा मन्दाकिनी पद १०९ पृ० ५१ ]

अथवा— आली रे मेरे नैनन वान पडी टेक॥

चित चढी मेरे माधुगी मूरत, उग विच आन अडी ॥१॥

× ×

× ×

× ×

मीरा गिरधर हाथ विकानी, लोग कहै विगडी ॥४॥

[ १ मीराबाई का दावला वे० प्र० ० ०० ]

परतु मीरा के पदों में उनके आध्यात्मिक विकास का जो क्रमिक इतिहास मिलता है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है । मीरा के पदों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमें चार-पाँच विशिष्ट धाराओं के पद मिलते हैं । सबसे पहले नाथ सम्प्रदाय के योगियों के प्रभाव से प्रभावित होकर मीरा के कितने ही पद 'जोगी' के सम्बन्ध में मिलते हैं । एक प्रसिद्ध उदाहरण देखिए

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाय परूँ मैं चेरी तेरी डौ ।

प्रेम भगति को पैडो ही न्यारी, हमकूँ गैल बत जा ।

अगग चन्दन की चिता गचाऊ, अपणै हाथ जला जा ।

जल जल भई भस्म की डेरी, अपने अग लगा जा ।

मीरा कहै प्रभु गिरधर नाथ, जोत में जोत मिला जा ।

[ मीराबाई की शब्दावली पृ० ९८ ]

फिर सतों के प्रभाव से प्रभावित समाज और जीवन की नश्वरता प्रकट करने वाले भजन के पद मिलते हैं । एक उदाहरण देखिए

भज मन चरन कँवल अविनासी ॥टेक॥

जेताड दीस बरनि गगन विच, तेताट सव उठि जामी ॥

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्है, कहा लिण करवत कासी ॥१॥

उस देरी का गम्य न करना, मार्यी में मिल जामी ।

यो समाज चह्य की वार्जा, साक पड्यो उठि जामी ॥२॥

[ मी० अ० वे० प्र० पृ० १०० ]

किं आगे बढ़कर उसी प्रभाव में प्रभावित रहस्योन्मुख विरह के पद मिलते हैं। यथा .

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाणे कांय ॥टेक॥

मूली ऊपर मेरा हमारी, किम विध सोणा होय ।

गगन मेंडल पे सेज पिया की, किम विध मिलणा होय ॥१॥

[ सी० शब्दा० वें० प्र० पृ० ४ ]

तीसरे भागवत के प्रभाव से प्रभावित श्रीकृष्ण लीला और विनय के पद मिलते हैं जो मूग्दाग के पदों से ममानता रखते हैं। उदाहरण के लिए देखिए:

मेरो मन बसिगो गिरधर लाल सां ॥टेक॥

मोर मुकुट पीताम्बरों, गल बेजती माल ।

गउवन के रँग टोलत हो जसुमति को लाल ॥१॥

[ सी० शब्दा० वें० प्र० पृ० ० ]

आगे विनय के पद .

मन रे परमि हरि के चरण ॥टेक॥

नुभग मीतल कँवल कामल, त्रिविध ज्वाला हरण ।

जिण चरण प्रह्लाद पग्से, डड पदवी धरण ॥१॥

[ सी० शब्दा० वें० प्र० पृ० २ ]

विनय आगे लीला के पदों के अतिरिक्त विरह के पद भी मिलते हैं जिनमें कृष्ण-कान्त के विप्रलम्भ श्रृंगार की भल्लक मिलती है। यथा .

टागि गयो मनमोहन पानी ॥टेक॥

आयो की गलि काइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी दाम्नी ।

पण को मारो मै यन वन टोल, प्रान तज करवत ल्युं कामी ।

भीरा के प्रभु हरि अविनामी, तुम मेरो ठाकुर म तेरो दानी ॥

[ सी० शब्दा० वें० प्र० पृ० २५-२६ ]

यन ने कान्त के प्रेम में तन्मय होकर मीरा गिरधरलालमय हो जाती है और उनके ऊट से उल्लास भरे पद प्रकट निकलते हैं जिनमें माधुर्य भाव की चंद्र अर्निव्यान्त मिलती है। यथा

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।  
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥

अथवा कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया ।  
वसी केरे वजैया कन्हैया ।

वृंदावन की कुज गलिन में गहे लीनो मेरो हाथ कन्हैया ॥ इत्यादि  
[ राग कल्पद्रुम प्रथम भाग पृ० ६६१ ]

इन विविध प्रकार के पदा में मीरों के जीवन पर विविध प्रभाव और उसके परिणाम-स्वरूप उनके आध्यात्मिक जीवन के विकास-क्रम का सुदृढ़ इतिहास मिलता है। सत-प्रभाव से प्रभावित होकर ससार की नश्वरता और ईश्वर-भक्ति की मारता प्रकट करती हुई उनकी प्रतिभा रहस्योन्मुखी हो उठती है, फिर भागवत के प्रभाव से कृष्ण-लीला, विनय के पद और विप्रलम्भ शृंगार से प्रारम्भ होकर उनके पदों में उस तन्मयता और प्रेम का परिचय मिलता है जो आध्यात्मिक अनुभूति का चरम विकास है और जो साहित्य में गोपी-भाव अथवा गधा-भाव के नाम से प्रसिद्ध है।

## २

बहि.साक्ष्य—मीराँवाई के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी बहि.साक्ष्य में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ नाभादास-रचित 'भक्तमाल' है, जिसकी रचना स० १६४२ के पीछे किसी समय हुई थी। उस समय तक मीराँवाई को मरे अधिक दिन नहीं हुए थे—शायद सत्र मिलाकर बीस वर्ष भी न बीत पाए थे। इसलिए उससे मीरों के सम्बन्ध में निकट सत्य जानने की पूरी सम्भावना थी। परतु दुभाग्य से 'भक्तमाल' में मीरों के सम्बन्ध में केवल एक ही छप्पय मिलता है। परतु वह एक ही छप्पय इतना अर्थगर्भित और गम्भीर है कि उससे कवि के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वह छप्पय इस प्रकार है :

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरौ गिरधर भजी ।  
मदश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो ।  
निर अक्रुश अति निडर रसिक जस रचना गायो ॥

दुष्टान् क्षयं विचारि मृत्युं को उद्यमं कीयो ।  
 वायं न वाको भयो, गगलं अमृतं ज्यो पीयो ॥  
 भक्तिं निमानं वजाय कै, वाह्यं ते नाहिन लजी ।  
 लोकं लाजं कुलं श्रृंगला नति मीनं गिरधरं भजी ॥

इसमें मार्ग की भक्ति-भावना की प्रशंसा को गई है। 'गगल अमृत ज्यो पीयो' में एक अलौकिक घटना का उल्लेख किया गया है जो विलकुल अममभव भी नहीं कहा जा सकता।

'भक्तमाल' के पश्चात् गुप्तार्त हित हरिवंश के प्रसिद्ध विद्वान् शिष्य हरीगम व्यास की 'धानी' के पदों में कुछ समकालीन भक्तों का उल्लेख है जिनमें मीराबाई भी एक हैं। एक पद इस प्रकार है .

विहारहिं स्वामी विन का गावै ?  
 विनु हरिवंशहिं राधिकावल्लभ को ग्य रीति सुनावै ?  
 रूप मनानन विनु या वृन्दा विपिन गावुया पावै ?  
 कृष्णदास विनु शिखर जू को को अय लाउ लडावै ?  
 मीराबाई विनु मो भक्तनि पिता जान उर लावै ?  
 स्वामी परमारथ जैमल विनु को सय वधु कगावै ?  
 परमानन्द दास विनु को अय लीला गाय सुनावै ?  
 मृगदास विनु पद रचना को कौन कविहिं कहि आवै ?

इस पद की ध्वनि में ऐसा जान पड़ता है कि हमकी रचना उस समय हुई थी जब हमें उल्लिखित सभी भक्त स्वर्ग मिथार चुके थे। परंतु हमें जगित सभी भक्त व्यास जी के समकालीन थे और उनमें व्यास जी का परिचय भी अस्पर नही होता। इस पद में लार्दिकता कृट-कृट कर भरी है जिनमें स्पष्ट पता चलता है कि भक्तों की जिन विशेषताओं का उल्लेख हममें किया गया है वे जैमल मुनी मुनाई नहीं कवि की स्वयं अनुभूत हैं। व्यास जी स० १६२२ के आगमन किमी समय गुप्तार्त हित हरिवंश के शिष्य हुए थे। हमारे पहले वे कौटिल्य के महाराज मधुवन शाह के राजगुरु थे। अस्तु, रूप, मनानन, कृष्णदास, मीराबाई, जैमल, परमानन्ददास और मृगदास आदि भक्तों का परिचय उन्हींने

स० १६२२ के आसपास अथवा कुछ वाद में प्राप्त किया होगा। मीराँवाई अनिश्चित अन्य सभी भक्तों का स० १६२२ तक जीवित रहने का निश्चयन है, अन्तु इस पद ने यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि मीराव भी स० १६२२ के आसपास तक जीवित थी।

हरि-भक्ता को पिता समझ कर हृदय से लगाना मीराँवाई की ही विशेष थी। मीराँ के चरित्र की यह पवित्रता और उच्चता, मगलता और विनम्र उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है।

‘चौगर्मी वैष्णवन की वार्ता’ में भी मीराँवाई के सम्बन्ध में कुछ बातें मिले हैं। यह प्राचीन वार्ता ग्रंथ गुसाई गोकुलनाथ द्वारा स० १६२५ में लिखना जाता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि अभी कुछ ही दिनों पहले विद्या-विभाग काँग्रेसी में प्रकाशित ‘प्राचीन २ रहस्य द्वितीय भाग की भूमिका में इस ग्रंथ को प्रामाणिक प्रमाणित करने चेष्टा की गई है और इन वार्ताओं के सम्बन्ध में कुछ नई बातें भी बतलाई हैं। ‘चौगर्मी वैष्णवन की वार्ता’ तथा ‘दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता’ के तीन संस्करण माने जाते हैं। मूल रूप में इन वार्ताओं का जन्म भी कथन और प्रवचन द्वारा हुआ। श्री गोकुलनाथ जी कथा-प्रवचनों में ‘चरित्र, मरु वार्ता और मेवकों से सम्बन्ध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्रवर्णन करते थे।’ इस प्रथम संस्करण का समय स० १६४२ से १६४४ माना गया है। इसके कुछ समय पश्चात् ‘सग्रह की साहित्यिक मानवीय विवृत्ति ने उन्त सुगन्धित रखने के लिए एक अव्यवस्थित लिखित स्वरूप जिमका समय स० १६६४ से १७३५ तक माना जाता है। यह संस्करण था जिममें ८४ और २५२ वैष्णवों का वर्गीकरण किया और गोकुलनाथ जी के गिण्य हरिराय ने वार्ताओं में गोकुलनाथ जी के निर्देश किया। तीसरा संस्करण श्री हरिराय जी के समय में हुआ समय हरिराय ने ‘भाव प्रकाश नामक टिप्पण भी लिखा। इस प्रकार के प्रामाणिक प्रमाणित अवश्य किया गया परंतु इतिहास और जीवके लिए इसकी उपयोगिता नगण्य है। इसका कारण यह है कि ये व

हुन कुछ पृष्टि मार्ग के पुनर्ग हैं जिनसे अलाकिक और प्रतिमानुचित बातों का सम्बन्ध है। केवल एक उदाहरण दर्शाने होगा। श्री आचार्य जी महाप्रभु के संवत् कुम्भदान सेवन छत्री तिथि की कर्ता के प्रथम प्रयोग में मेलना है।

बहुत वादकाशम से छत्र में पतारे चहूँ। श्री का सम्बन्धी है। तब वेद-  
 ज्ञान का कौं मान है तथा पदों। तब कुम्भदान को कलौ जीव ठाटी रथियों।  
 तब श्री आचार्य जी महाप्रभु आगे पदों। तब वेदव्यास जी नामही आये। सो  
 श्री आचार्य जी महाप्रभु का अपने नाम म ल आये। पाछे वेदव्यास जी ने  
 श्री आचार्य जी महाप्रभु का कथो जी नून न श्री भागवत का टीका कौना है  
 सो सोझी सुनावा। तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कुल शीत के आन्याय  
 हो एक लोक कथो। सो द्वाक

नाम वाद कृत वाम कपोलो धलतरु अर्धित डेगु।

रामलागलि निर्गश्रित मार्ग नाथईश्वरि नर अकुन्द ॥

वा जलोक वा न्यायान कथो सो तीन दिन न चण्डा भदा। तब वेदव्यास  
 जी ने बोलती कर्ता जो मैं या भागवत के व्याख्यान हो अब वाग्ना करि सकत  
 नाहीं नते अब जमा करे। पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु ने वेदव्यास जी  
 सो कथो सो नून वेदान्त के ऐसे सूत्र कथा कथे जो मानागद पर अर्थ लखो।  
 तब व्यास जी ने कथो जो मैं कथा कथे सोना आता ही ऐसी कर्ता जो ऐसी  
 अर्थ करियो। तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कथो जो मैं द्रव्यवाद पर अर्थ  
 गिने से न व्यास जी ने सुनायो सो व्यास जी सुनकर बहुत प्रसन्न भए।

[संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं।]

इस विज्ञान के प्रयोग में एक प्रयोग की सत्यता पर कोई विवाद नहीं कर  
 सकता। वादकार ने बलवान् अभिप्राय दालो की प्रशंसा में ऐसे प्रयोगों की  
 प्रशंसा की अज्ञानता का ही परतु जो एक अभिप्राय के अन्तर्गत में अज्ञान  
 जिनके प्रयोग इन संप्रदाय के उत्कर्ष में वाचक प्रभावित हो रहा था अथवा  
 तो सत्ता था उनही अन्तर्गत प्रयोग करना था जो एक ही वाद उद्देश्य  
 प्राप्त करता है। अज्ञान के अन्तर्गत के प्रभाव से अज्ञान के बलवान् ने बलवान्



# दूसरा अध्याय भक्तियुग और मीरों

हिन्दी के भक्त कवियों का मीरवादी का एक विशिष्ट स्थान है। उन मतानुसार प्रति हिन्दी समाज की उदारता की उदात्तता अद्भुत अवश्य है, परन्तु आश्चर्यजनक। जिनका कविता में साहित्यिक कृत्रिमता का लेश भी नहीं, जिनसे जनता को आकर्षित करने का कोई प्रयत्न नहीं, स्वयं केवल अपनी भक्तिभाव के उल्लास में भक्ति आनंद प्रेम के मधुर गीत गाएँ, अतः जिनसे विद्युत् का भाव ही हलका किया, जिनका कोई भी परम्परा नहीं, जिनका कोई व्यवसाय सम्प्रदाय नहीं। उनके प्रति जो हिन्दी समाज उदारता में तो कोई कमी या बाधा नहीं है। परन्तु हिन्दी प्रायः के बाहर हिन्दी के मधुर गीत गाने और प्रेम गीत प्रचार है—गुरुदास या प्रभात में मीरों के गीत गाए जाते हैं। अतः समाज का वह भाव ही नष्ट हो, जो हिन्दी समाज में सर्वत्र और निरंतर प्रचलित है। युग का भक्ति भावना का वैसा शुद्ध रूप नहीं है। वे पद्यों में सितता के वैसा अत्यन्त ही दुर्लभ प्रयोग करते हैं।

## १

भक्तों की प्रसिद्ध प्रवृत्तियाँ का सर्वप्रथम निरलेखन करने पर सर्वप्रथम हमें उनके गीत प्रान्तों और उपरान्तों के दर्शन होने हैं जो वेद और आनन्द में मीरों का नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्राग्भ अत्यन्त ही उन हीनाओं का मानना जा सकता है जिनमें उपा, वरुण, उर, नक्षत्र, पृथिवी, जल, नक्षत्रों का देवता शक्तियों का प्रसन्नता मिलती है, तथा अत्यन्त ही मीरों के उन हीनाओं का नाम से प्रसिद्ध है जो मीरों के और मीरों के प्रसन्नता मिलती है जो मीरों के प्रसन्नता मिलती है।

सोलहवीं शताब्दी में सगीत का पुनरुत्थान हुआ था। जौनपुर के इब्राहीम शाह शर्की तथा उसके पौत्र हुसेनशाह शर्की के दरबार में भारतीय सगीत की विशेष उन्नति हुई थी। इसी शर्की सल्तनत में कड़ा मानिकपुर के शासक मलिक सुलतान शाह के पुत्र मलिक बहादुरशाह ने एक बृहत् सगीत सम्मेलन का आयोजन कर 'सगीत-शिरोमणि' नामक ग्रंथ (रचना काल १४२८) प्रस्तुत कराया था। इसी समय मेवाड़ के स्वनामधन्य महाराणा कुम्भा भी बड़ा सगीत प्रेमी, गायक और वीणा वादन में निपुण प्रसिद्ध हुआ है। उसने सगीत-शास्त्र पर 'सगीत राज' नामक ग्रंथ की रचना की, साथ ही साथ सगीत-रचना भी 'सगीत-रत्नाकर' तथा 'गीतगोविन्द' की टीका के रूप में उपस्थित की। लगभग उसी समय निधुवन के स्वामी हरिदास, जो प्रसिद्ध गायक तानसेन के सगीत-गुरु प्रसिद्ध हैं, तथा वैजू बावरे भी भारतीय सगीत की धारा बहा रहे थे। मुगल सम्राट अकबर भी भारतीय सगीत का प्रेमी था और उसके दरबार में तानसेन, रामदास और उसके पुत्र सुरदास जैसे प्रसिद्ध गायक रहते थे। बल्लभाचार्य के शिष्यों में कितने ही प्रसिद्ध गायक थे। संगीत के उस पुनरुत्थान काल में हिन्दी साहित्य में भी संगीत-प्रधान गीति-काव्य-शैली का खूब प्रचार हुआ। हृदय के धर्म भक्ति की अनुभूतियों और भावनाओं की सरस धारा प्रवाहित करने के लिए यह काव्य-रूप अत्यंत उपयोगी भी प्रमाणित हुआ। फलतः उस काल में, जिसे साहित्य में भक्तिकाल की सजा दी गई है, हिन्दी कविता में गीति-काव्य-शैली का बोलबाला था।

गीति-काव्य संगीत-प्रधान तो होता ही है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी अतर्मुखी प्रवृत्ति है। साधारण गीति-काव्यों में यह अतर्मुखी वृत्ति कवि के व्यक्तिगत अथवा उसके नायक और नायिका के सुख और दुःख, आशा और निराशा, भय और पीडा, क्रोध और वृणा इत्यादि की सहज और सगीतमय अभिव्यक्ति करती है। परंतु कुछ गीति ऐसे भी होते हैं जहाँ कवि की अतर्मुखी वृत्ति उसकी व्यक्तिगत अथवा काल्पनिक नायक-नायिका की लौकिक भावनाओं और अनुभूतियों का अतिक्रमण कर अलौकिक के क्षेत्र में जा पहुँचती है, जहाँ लौकिक और साधारण सुख-दुःख के स्थान पर अलौकिक और असाधारण

आनंद और वेदना की अभिव्यक्ति होती है; जहां साधारण सयोग और वियोग की अनुभूतियों के स्थान पर स्वयं भगवान से सयोग और वियोग की साधना-भयी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार के गीतियों की महत् गीति-काव्य की मजा दी जा सकती है। इनमें भगवान के लिए पागल हृदय की अस्पष्ट और अव्यक्त ध्वनि सुनाई पड़ती है।

हिन्दी साहित्य में महत् गीति काव्य की रचना करने वालों में मीरो अद्वितीय हैं। पद-रचना में सुरदास और मीर-कोकिल विद्यापति ने भी अनुभूत कौशल प्रदर्शित किया है, परंतु सीधे हृदय पर चोट करने वाली रचना मीरो के ही कंठ से निःसृत हुई थी। जहां सुर और विद्यापति के पदों में ब्रज की गोपियाँ अथवा गधा के सम्भोग और वियोग की आनंद और वेदनामयी अनुभूतियों की गरल अभिव्यक्ति हुई है वहां मीरो के पदों में स्वयं मीरों की विरह-व्यथा साकार हो उठी है। सुरदास के मृत्क पदों और गीतियों के भीतर एक कथा की वाग अत-मलिला सरस्वती की भाँति बहती रहती है और उसी प्रसिद्ध रूपा के सदृश उन पदों का सौन्दर्य परखा जा सकता है, इसी प्रकार विद्यापति के पदों में भी नारिकेल-भेद की परम्परा का सदृश लिए बिना उनकी रमणीयता भली प्रकार स्पष्ट नहीं हो पाती। परंतु मीरो के पदों में रूपा की न कोट अंतर्धान है, न किसी साहित्यिक परम्परा का सहान है - वहाँ मीरो की भावना सीधे मीरों के हृदय से, उनके अतर्तम प्रदेश से, निकलती है, जिनके लिए उनका प्रभाव भी अविश्व पता है। मीरो के पदों में सरलता है, स्पष्टता है, और है नीहापन (directness)। परंतु उन पदों की सबसे बड़ी विशेषता है स्वच्छंदता। वह युग-युग से चलती आन्तः काल-परम्परा ने स्वच्छंद है, भाषा और हृद-भारों और अनुभूति निर्माता की भी आन्तः परम्परा के ही में नहीं है। परंतु मीरो का स्वच्छंदता राग अनसंयोजन नहीं है, वह एक निर्भरता है। अनसंयोजन वाग का स्वच्छंदता है, जिसमें एक राग है, एक अंग है, एक ही है, कर्णों की नीमा का उत्सव है करने का एक उन्माद है; परंतु जिसमें अखण्ड नहीं, अश्लीलता नहीं, मिश्रित का भावना नहीं।

मीराँ की भक्ति-भावना की स्वच्छदता ने, जिसमें लोक-लाज नहीं था, समाज का भय नहीं था, काव्य-कला में भी इसी प्रकार की स्वच्छंदता बूँद ली थी। भाषा, छंद और काव्य-परम्परा सबमें मीराँ ने एक स्वाभाविक स्वच्छदता प्रदर्शित की है।

## १

भाषा—मीराँवाई के पद वर्तमान रूप में तीन भिन्न भाषाओं में मिलते हैं। कुछ पदों की भाषा पूर्ण रूप से गुजराती है और कुछ की शुद्ध ब्रज भाषा है, शेष पद राजस्थानी भाषा में पाये जाते हैं, जिनमें ब्रजभाषा का भी पुट मिला हुआ है। पता नहीं मीराँ के मूल पद किस एक अथवा किन-किन भिन्न भाषाओं में लिखे गए थे, परंतु इस समय उनमें स्पष्ट तीन भाषाएँ हैं। ऐसा भी सम्भव है कि सचमुच ही तीन भिन्न भाषाओं में लिखी गई हों क्योंकि मोरों गुजरात में काफी दिनों रही थी, ब्रज में भी उन्होंने लगभग पाँच-छ. वर्ष बिताए थे और राजस्थान में तो वे पैदा हुई थीं, वही व्याही गई थीं और जीवन का अधिकांश भाग वहीं बिताया था।

ब्रजभाषा तथा ब्रज-मिश्रित राजस्थानी भाषा में विरचित मीराँ के पदों में भाषा का आडम्बर तनिक भी नहीं है। जायसी, कबीर तथा अन्य सत कवियों की भाँति मीराँवाई भी परिष्कृत तथा पूर्ण साहित्यिक भाषा नहीं लिख सकती थीं, ऐसी बात नहीं है, वरन् इसके विपरीत कुछ पदों में मीराँ ने ऐसी परिष्कृत तथा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है जो पिछले खेव के कवियों के लिए आदर्श मानी जा सकती है। उदाहरण के लिए देखिए

मन रे परसि हरिके चरण ॥ टेक ॥

सुभग भीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।

जिण चरण पहलाद परसे, उन्द्र पदवी धरण ।

जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण ।

इत्यादि [ मी० पदा० पद म० १ ]

अथवा छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना ।

में तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना ।

जो तुम मेरी बहिया गहत हो, नयन जोर मोरें प्राण हरो ना ।  
बुन्दावन की कुज गलिन में, रीत छोड अनरीत करो ना ।  
मीरों के प्रभु गिरधर नागर. चरण कमल चित टारे टरो ना ॥

[ मी० प० १० पद म० १७२ ]

शैर भी मखी मेरी नीद नगानी हो ।

पिय को पथ निहारत, सिगरी रैन विहानी हो ॥

सब सखियन मिलि सौख दई मन एक न मानी हो ।

विन देख्या कल नाहि. जिय ऐसी ठानी हो ॥

अंगि अंगि व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो ।

अतर घेदन विरह की वह पीर न जानी हो ॥

ज्यूँ चातक बन कूँ गटे, मद्धरी जिमि पानी हो ।

मीरों व्याकुल विरहणी, मुध बुध विमगनी हो ॥

[ मी० प० १० पद म० ८७ ]

सी प्रकार और भी कितने पद हैं जो सरलता और स्पष्टता, मधुरता और जेमलता में हिन्दी साहित्य में अतुल हैं । सर और मनिराम, रसराम और बनानंद की ब्रजभाषा भी इतनी मधुर और स्पष्ट नहीं है । परंतु तीनों की भाषा का स्वच्छद प्रवाह देवना हो तो देखिए :

जोगिया री प्रीतड़ी हैं दुखड़ा रो मूल ।

हिल मिल वात बणावत माटी, पीछै जावत भूल ।

तोड़त जेज फगत नहि मजनी, जैसे चमेली रे फूल ।

मीरों के प्रभु तुमरे दरग विन, लगत द्विपदा में मूल ॥

[ मी० प० १० पद म० ५८ ]

प्रथम मेरे परम ननेही राम री निंत ओलेंदा आवे ॥ टेक ॥

राम हमारे हम हैं नाम के, एहि विन कुछ न मुहावे ।

शायक वह गए अजहु न प्राण. अजबे प्रति उकलावे ।

तुम दरमण री ग्राम रमदा, निन दिन चितवत जावे ॥

[ मी० प० १० पद म० १००३ ]

और भी प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय ॥ टेक ॥

छोड़ गया विस्वास सँगाती, प्रेम की वाती बराय ॥

अथवा नीदलडी नहीं आवै सारी रात, किस विध होइ परभात ॥

मीतड़ी और दुखडा, ओलूंडी और जिवडो, रमइया और सँगाती, नेहड़ी और नीदलडी इत्यादि शब्दों में कितनी स्वाभाविक रमणीयता है। अनगढ़ और बीहड़ चट्टानों पर उछलती हुई जल की धारा जिस प्रकार मधुर संगीत उत्पन्न करती है, मीरों की स्वाभाविक भाव-धारा भी इन अनगढ़ और स्वाभाविक शब्दों में उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है। यह स्वच्छंद संगीत-धारा केवल मीरों के ही पदों में मिल सकती है जो यमक और अनुप्रास के आडम्बर से उत्पन्न हुई संगीत से कम मधुर नहीं है। यह सत्य है कि

— ललित-लवण-लता-परिशीलन कोमल मलय समीरे ।  
मधुकर-निकर-करम्वित कोकिल कूजित कुज कुटोरे

की कोमल-कात-पदावली अत्यंत मधुर है, परंतु मीरोंवाहई की :

राम मिलण रो वणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ ।  
दरस बिना मोहिँ कुछ न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ ।  
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पडी विरह की पाशड़ियाँ ।  
अब तो वेगि दया करि साहब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ ।  
नैण दुखी दरसण कुँ तरसै, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ ।  
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ ।  
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ ।  
मीरों के प्रभु कवर मिलोगे, पूरौ मन की आसड़ियाँ ।

[ मी० पदा० पद सं० १०८ ]

स्वच्छंद वेग से बहने वाला पदावली भी सच्चे रसिकों के लिए कम मधुर और आकर्षक नहीं है।

मीरों की भाषा में अलंकरण नहीं, सजावट नहीं, वरन् एक स्वच्छंद

आवेग है। भाव की स्वच्छन्दता के साथ स्वाभाविकता, परिष्कार के साथ अनलकरण मीरों की भाषा की विशेषता है।

छंद—मीरों के पद पिंगल के नियमों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए थे। उन पदों की गति और मीरों के मरल और सुंदर भावों का स्वाभाविक संगीत मिलता है, जिसका कोई नियम नहीं। भावों के अनुरूप ही छंद की गति बदलती रहती है। देखिए :

करणों सुणि स्याम मेरी,

मैं तो होः रही चेगी तेरी।

दरमण कारण भई वावरी विरह विथा तन घेरी।

तेरे कारण जोगण हूंगी दूंगी नय विच फेरी।

कुंज मय ऐरी हैरी ॥

अंग भभूत गले म्रिग छाला यो तन भभम भरूरी।

अजहूँ न मिल्या गम अचिनामी, यन यन बीच फिरेरी।

गेऊँ नित घेरी हैरी ॥

[ नी० पद० पर न० ५४ ]

इसका पहला चरण १३ मात्रा का है, दूसरा १८ मात्रा का, तीसरा और चौथा १६+१२ मात्रा का और पांचवा १३ मात्रा का है। इस प्रकार स्वच्छंद भाव ने छंदों की गति बदलती रहती है। भाषा की गति मीरों के छंद भी स्वच्छंद है।

कला—मीरों के पद नायिका भेद तथा अन्य सार्थक कल्पनाओं से ही युक्त नहीं हैं। उनमें ध्वनि और व्यंजना, गति और व्यंग्य, गुण और अलंकार की काव्य-परम्परा का भी निर्वाह नहीं है। यों तो कुछ पदों में रसकी,

१. कला (२) अथवन जल नीच नाच प्रम काल बोध ।  
 गध यो रंग फौं गदं आनर पद होरे ।  
 (३) गोमानर री प्रो कर्ण पनो उठी धार ।  
 गन नाच ज गार रिया, उर फाती धार ॥  
 गन नोकर मी नोपे, नयन पाग नार ।  
 न दुनिया में रन ॥ ३ ॥ गी गी पार ॥

उपमा<sup>१</sup> और उत्प्रेक्षा<sup>२</sup> आदि अलंकारों की झलक अवश्य मिल जाएगी और प्रसाद गुण तो मीराँ की कविता का प्राण ही है, परंतु ये सभी विशेषताएँ सुंदर काव्यों में साधारण रूप से पाए जाते हैं, कला के रूप में मीराँ में इनका लेश मात्र भी नहीं है। और ये जा बड़े अलंकार मिल भी जाते हैं वे प्रायः अपवाद-स्वरूप ही हैं, क्योंकि इनकी संख्या नगण्य है। सच तो यह है कि जहाँ हृदय की अत्यंत मार्मिक वेदनाओं और गूढ भावा को खोल कर रखना पड़ता है, वहाँ गुण और अलंकार, ध्वनि और वक्रोक्ति आदि काव्य-कला की परम्पराओं की कोई उपयोगिता ही नहीं, कोई सार्थकता ही नहीं, वहाँ तो कविता-सुंदरी अपने सरल स्वाभाविक वेश में ही अत्यंत आकर्षक जान पड़ती है।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही काव्य में कला की प्रधानता स्वीकार की गई है। इसी कारण प्रायः सभी कवियों में कला का गहरा रंग पाया जाता है। परंतु मीराँ की कविता में इसका अपवाद मिलता है। अथे कवि सुरदास ने विरहिणी राधिका के अंगों की श्रीहीनता दिखलाने के लिए काव्य-परम्परा का सहारा लेकर लिखा है।

तव ते इन सबहिन सच्चु पायो ।

जब ते हरि सदेस तिहारो सुनत ताँवरो आयो ।

फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।

ऊँचे बैठि विहग सभा विच कोकिल मगल गायो ।

निकसि कदरा ते केहरिहू माथे पूँछ हिलायो ।

वन गृह तें गजराज निकसि कै अँग अँग गर्व जनायो ॥

१ उपमा-(अ) नातो नाम को मोसू तनक न तोड्यो जाइ ।

पानाँ ज्यू पीली पडी रे, लोग कहें पिंट रोग ।

(ब) प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम विन रखो न जाय ॥

जल विन कँवल, चंद्र विन रजनी, ऐमे तुम देख्याँ विन सजनी ।

२ उत्प्रेक्षा जबसे मोहिँ नदनदन दृष्टि पड्यो माई ।

तवसे परलोक लोक, कछु न सुहाई ।

कुंडल की झलक अलक, कपोलन परछाई ।

मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई ।

श्रौर जानकी के विरह में राम के मुख में तुलसीदास ने भी इसी प्रकार की कला की करामत प्रकट किया है जब कि गम कहते हैं :

कुदकली दाड़िम दामिनी, कमल, मरद सभि, अहि भामिनी ।

श्रीफल कनक कदलि तरपाछी, नैकु न मंरु सकुच मन मारी ।

सुनु जानकी तोहि विनु आज . हरये सकल पाठ जनु गजू ॥

इस 'रूपकातिशयाक्ति' अंलकार का आनन्द मृदुय चारे जितना पा ले परतु राभिका तथा गम के विरह की अभिव्यक्ति इसमें नहीं के बराबर हुई है । मीरी को अपनी विरह व्यथा प्रकट करनी है, इसलिए उन्हें श्रीफल, दाड़िम और दामिनी तथा ब्याल, कोकिल और बैरि की प्रसन्नता ही और देगने का अवकाश भी नहीं मिलता ; उन्हें तो अपनी ही विरह-व्यथा से छुट्टी नहीं मिलनी । वे कितने मरल दग में अपनी विरह-व्यथा का डालती हैं -

मैं विरहणि बेटो जगूँ, जगत मय मोवे गी आली ।

विरहणि बेटो, रगमल में मोतियन की लड़ पोवे ।

रुह विरहणि हम ऐसी देसी असुवन की माला पोवे ।

ताग भिण गिण रेण विहानी सुन की बड़ी कव आवे ।

मीरा के प्रभु गिणवर नागर मिल के विद्वुट न जावे

इस स्पष्ट सरलता में जा नान्दर्य है वह अलंकार के आउम्यर में कहा । इसी प्रकार नंदनंदन में अभिय जट बादल का प्राति देग कर रूपरस की प्यासी मोषिया उपालम्भ-प्रकार का उटती है :

दर पे बटगडु बग्गन आण ।

अपना करंध जानि नंदनदन गरजि गगन धन छाए ।

मुनियत हैं परदेन बसत मोगे रंवर मदा पराण ।

चातक कुच ही पाए जानि के. तेड तयो न भाए ।

गुण विण हरित. गरुण बेनी मिति दादुर मृतक पिआए ॥

परतु मीरा का अंगन तो अपने गिरा न नागर पर ही पटल है; उन्हें बादल और चंद्र, मंग और पौल आदि की ओर देगने की इच्छा भी नहीं, वे गला

अपने गिरधर के प्रेम की उनसे तुलना क्यों करने चलीं । वे तो सारे ससार को भूल कर एक उसी नागर की रट लगाए हुए हैं :

म्हँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिँ विसरूँ दिन राती ।  
तुम देख्याँ विन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती ।  
ऊँची चढ चढ पथ निहारूँ, गय रोय अँखियाँ राती ।

× ×

× ×

× ×

पल पल तेरा रूप निहारूँ निरख निरख सुख पाती ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरखाँ चित राती ॥

और इसीलिए प्रकृति के नियमानुसार वसत ऋतु में मधुवन को विकसित और पल्लवित देखकर सूर की गोपियों की भाँति वे उस प्रकार कोसती नहीं कि

मधुवन तुम कत रहत हरे ।

विरह वियोग स्यामसुंदर के ठाडे क्या न जरे ।

उनके अंतर में तो श्याम-विरह के अतिरिक्त और कोई भाव ही नहीं है । ईर्ष्या और द्वेष, मोह और मत्सर, क्रोध और घृणा सब इस विरह की वाढ में बह गया है :

राम मिलण के काज मखी, मेरे आरति डर मे जागी री ॥ टेक ॥

तलफत तलफत कल न परत है, विरह वाण उर लागी री ।

निसदिन पथ निहारूँ पीव को, पलक न पल भगि लागी री ।

पीव पीव मैं रदूँ रात दिन दूजी सुधि बुधि भागी री ।

विरह भवँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री ॥

मीराँ के विरह की यह एकनिष्ठा कला का उपहाम-सा करती है, क्योंकि साधारण व्यथा और माधुर्य प्रेम तो कला की करामात से, वक्रोक्ति और व्यंजना से, उपमा और उत्प्रेक्षा से रमणीय, चमत्कारपूर्ण और आकर्षक बनाए जा सकते हैं, परंतु जहाँ प्रेम का अपार सागर है, जहाँ उमड़ती हुई वेदना की एक वाढ है, वहाँ कला और कौशल की पहुँच भी नहीं हो पाती । जहाँ अंतरतम की पीडा और आनंद की अनुभूति की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है, वहाँ रस, और अलंकार ध्वनि और व्यंजना, रीति और वक्रोक्ति आदि सबका अतिक्रमण कर सरल और स्पष्टतम शब्दों का ही महारा लेना पड़ता है । मीराँ

ने अपना उर्मी अतस्तम की व्यथा का सरलतम और स्पष्टतम शब्दों में अभिव्यक्त की। यह कला से अतीत और काव्य-परम्परा से स्वच्छंद महत् गीतिकाल्य का रचना मार्ग की अपनी विशेषता है।

मान के पदों में मयम अद्भुत और अपूर्व काशल यही है कि उनकी मयम रचना कला के आडम्बर से रहित है। जैसा कि गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मुर्शी ने लिखा है, कलाविद्वानता ही मीरा की सबसे बड़ी कला है। दक्षिण जीवनकार ने कवियों की रुचि और प्रवृत्ति-भेद के अनुसार तीन मार्गों की कल्पना की है। कुछ कवि मौकुमार्य प्रवृत्ति के होते हैं और उनका मार्ग 'सुकुमार मार्ग' कहा गया है। कुछ कवि वैचित्र्य से रुचि रखते हैं और 'विचित्र मार्ग' के पथिक हैं, कुछ उन दोनों में मध्यम रुचि के होते हैं और अपनी कविता में इन दोनों का समन्वय करते हैं। हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवि विचित्र मार्ग के पथिक हैं। गीतिकालीन साहित्य में कर्कोक्ति और वैचित्र्य का ही प्राधान्य है। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मयम मार्ग का अनुलम्बन किया है। सुकुमार मार्ग के पथिक कवि हिन्दी में बहुत ही कम हैं और उन कवियों में मीरावाचि सर्वाग्रणी हैं।

सुकुमार मार्ग की रचनाओं में कर्कोक्ति-आधार्य (कविता) नहीं होता बल्कि व्यापक होता है। उनमें स्वभाविकता का प्रधानता ही जाना है और जो अन्य परस्पर शब्दों के पृथक् प्रत्यय के परिणाम से होकर बिना प्रयत्न ही आ जाते हैं और अर्धवत् व्यापक होते हैं। इन रचनाओं में रस का प्राधान्य रहता है, रस-भक्ति अधिक पाए जाते हैं तथा सौन्दर्य, प्रसाद, लक्ष्य (शब्दों का सुन्दर चयन) और आभिनय (smoothness) का विशेष ही विशेषता होता है।

विचित्र मार्ग के कर्कोक्ति और वैचित्र्य का प्राधान्य होता है, कविमत्ता और व्यापकता अधिक होता है। सभी परस्पर शब्दों का प्रयत्न और पृथक् प्रयत्न पाए जाते हैं। इनमें सौन्दर्य का प्राधान्य रहता है और कर्कोक्ति-आधार्य अधिक पाए जाते हैं। इनमें सौन्दर्य, प्रसाद, लक्ष्य (शब्दों का सुन्दर चयन) और आभिनय (smoothness) का विशेष ही विशेषता होता है।

## उपसंहार

हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में मीराँवाड़ का स्थान बहुत ऊँचा है, परतु कितने ही लब्धप्रतिष्ठ समालोचक मीराँ को कवि मानने को भी तैयार वे तो उन्हें केवल एक प्रसिद्ध भक्त मात्र स्वीकार करते हैं। 'मीरा क साधना' नामक आलोचना ग्रन्थ के रचयिता महोदय भी मीराँ को कवि मानते क्योंकि एक स्थान पर वे लिखते हैं "मीरा न कबीर की भाँति ही थी, न जायसी की तरह कवि ही। वह एक मात्र प्रेम की पुजारिन थी। न कबीर को ज्ञानी और जायसी को कवि समझते हैं उनके लिए तो आँई सचमुच ही न तो ज्ञानी हैं न कवि क्योंकि उन्होंने न तो कबीर की 'अटपटी बानी' कही और न जायसी की भाँति असम्भव अतिशयोक्ति भ्रमण की। मीराँ ज्ञानी नहीं थीं, इसे मानने में किसी को विशेष नुक़ा होगी, परतु कवि तो मीराँ के समान हिन्दी में बहुत ही कम हुए हैं। वाग्विदग्धता और उक्ति वैचित्र्य ही काव्य का मानदण्ड है तो मीराँ अवश्य कवि हैं और मीराँ जायसी की तरह कवि नहीं, परतु कविता कहीं महत् और ऊँची वस्तु है। जो कविता में कला की खोज करते हैं अलंकारों और वक्रोक्तियों को ही कविता मानते हैं, उन्हें मीराँ के निराशा ही होगी, परतु जो कविता को कला से परे, अलंकारों के आ से अतीत, हृदय की स्वाभाविक और सरस अनुभूतियों की सरलतम स्पष्टतम अभिव्यजना के रूप में समझते हैं, उन्हें मीराँ के पदों में उ कोटि की कविता के दर्शन होंगे। मीराँ के पदों जो अद्भुत और अपूर्व उनकी कलाविहीनता है उसे हमारे विज्ञ समालोचकों ने अत्यन्त समझ रक्खा है। कला की अभ्यस्त आँखों को कलाविहीनता का स्वा सौन्दर्य जैसे आकृष्ट नहीं कर पाता, उसी प्रकार काव्य-कला की परम्

हृदय पंडिता की मांगों की कलाविहीनता नहीं जंची। इसी कारण मीरों  
। सिन्धी साहित्य में जो उचित स्थान है वह आज भी उन्हें नहीं मिला।

विरह निबंदन में मीरा के पद अद्वितीय हैं। 'दरद दिवाणी' मीरों ने  
रूप की 'सैमी मन्ची' और उत्कृष्ट व्यञ्जना की हैं। सैमी व्यञ्जना अन्य किसी  
। काव्य की भाषा में नहीं हुई। मीरा ने अपनी विरहाग्नि की ज्वाला का प्रति-  
रूप अपने चारों ओर फैले विन्मृत प्रकृति में नहीं देखा चंद्र की शीतल  
रेखाओं ने, शीतल कला में मद-मंद रहने वाली सुगंधित वायु ने, सुसुकाते  
ए कुसुमा ने उनकी विरहानल को उद्दीप्त नहीं किया। मावन की गते  
इसे वादन के दम के समान नहीं जान पड़ी, पलान के 'निरधूम अगार'  
। अन्य टालों पर चढ़कर जल बग्ने की दृष्टि उन्हें कर्मा नहीं हुई, साराश यह  
के मांग की प्रथमी विरह-व्यथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त होकर नहीं दिखाई  
दी। इसका कारण यह नहीं था कि मीरा का विरह अन्यत्र साधारण कोटि  
का था, बल्कि इसका एक मात्र कारण यही था कि वह अत्यंत गर्भांग था।  
। उस विरह में वास्तु चेतना ही अधिक होती है अतर्वेदना कम, उर्मी में विरही  
रहती तो, भागें मन्सर का ज्वालामय और भन्म होता हुआ देखता है, और  
व्य भी नित्य जलना रहता है। उर्मी विरह के कारण जायसी की विरहिणी  
। निगम कर उठती है।

लांगडें चर, जै जल मारु, फिगि फिगि भुजसि, तजिउं न वारु ।

सखर गिवा पटत निति जाई, दूक दूक होट-के विहगई ।

विग्गन गिवा, कन्हू पिप टेवा, दीटि दैवगन मेरदहु एका ॥

इसी विरह में पण्डित की विरहिणी गोपियों भगवान् कृष्ण को मदेश  
। मन्ती है :

ऊपें यह मधे लो मंटेनो काट दीजो जाट,

मज में हमारे ली न फुले वन कुज है ।

विमुन, गुलाब, इचनार ली अनागन के,

दारन पै टोलन अंगारन के पुज हैं ॥

। और उर्मी विरह में सुन्दर का विरहिणी गोपियां मिलवती हैं :

विनु गुपाल वैरिनि भई कुजे ।

तव वै लता लगत अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल का पुज ।

परतु जहाँ विरह बहिर्मुखी न होकर अतर्मुखी होता है, जहाँ वह अतर्गम्भीर महासागर की भाँति ऊपर से शात किंतु भीतर ही भीतर आन्दोलित होता रहता है, वहाँ बाह्य वेदना नहीं होती अतर्वेदना भीतर ही भीतर अपन काम करती है, वहाँ शरीर भाड के समान नहीं जलता, कुजै ज्वाल-य पुजै नहीं बनती, किशुक, गुलाब, कचनार की डारों पर अगारों के पुज नह डोलते, वहाँ तो मीराँ की भाँति

अगि अगि व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो ।

अतर वेदन विरह की वह पीर न जानी हो ।

का अनुभव होता है और विरहिणी केवल इतना ही कहती है कि

प्यारे दरसण दीजो आय, तुम विन रह्यो न जाय ।

जल विन कँवल, चद विन रजनी, ऐसे तुम देख्यौं विन सजना,

याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, विरह कलेजो खाय ।

दिवस न भूख नींद नहिँ रैणा, मुख सू कथत न आवै बैणा,

कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय ।

यह वेदना अनिर्वचनीय है । मीराँ का विरह अतर्मुखी था, बहिर्मुखी नहीं इसी कारण उनका विरह निवेदन अन्य हिन्दी कवियों के साधारण विरह वर्णन से बहुत भिन्न है । सम्भवतः इसीलिए हिन्दी के कितने ही समालोचकों ने मीराँ का विरह वर्णन पसंद नहीं किया । 'मीरा की प्रेम-साधना' के रचयिता की सम्मति है कि "हिन्दी साहित्य में विरह के सर्वोत्कृष्ट कवि जायस हुए<sup>१</sup> ।" इसका अर्थ यह हुआ कि जायसी का विरह-वर्णन सूरदास, विद्यापति और मीराँ से भी उत्कृष्ट है । यहाँ भी ऐसा जान पड़ता है कि जायसी का वाग्विदग्धता और अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियों से प्रभावित होकर विज्ञ समालोचक ने ऐसी बात लिख डाली है, नहीं तो कहाँ मीराँ और कहीं जायसी ।

हिन्दी साहित्य के कवि-गायकों में मीरों का स्थान उच्चतम है। गीति-  
लय की रचना करने वालों में हिन्दी के तीन कवि—विद्यापति, सूर और  
मीरों—बहुत सफल हुए हैं। इनमें मुरदास में अद्भुत व्यापकता है तो मीरोंवाइ  
अपूर्व गम्भीरता, विद्यापति के पदों में अनुपम माधुर्य भरा है तो मीरों के  
द मृदु स्वप्नता और स्वच्छन्दता में अद्वितीय हैं। मीरों की रचनाएँ परिणाम  
। अधिक नहीं हैं, परन्तु जो गौरी रचनाएँ प्राप्त हैं, गेयता और गम्भीरता,  
रसता और स्पष्टता में वे अतुलनीय हैं।

मीरों के स्फटिक तुल्य स्वच्छ हृदय पर भक्ति-युग की सभी विशुद्ध  
भावनाओं का प्रतिबिम्ब पडा था। कबीर और रैदास की निर्गुण ज्ञान-भक्ति  
र लोक चेतन्य और चंडीदास के राधा-भाव तक की सभी विशुद्ध भक्ति-  
भावनाएँ मीरों की कविता में एक साथ ही मिल जाती हैं; साथ ही कबीर का  
पदपदापन, तुलसीदास की साम्प्रदायिक सकांर्णता और जयदेव तथा विद्या-  
पति की परम्परागत अस्लौल व्यजनाओं का उसमें लेश भी नहीं है। यह सत्य  
है कि मीरों में वह पाटित्य नहीं, वह विद्या बुद्धि नहीं, वह नास्तिक शैली  
नहीं परन्तु के प्राप्त वह कला की भावना नहीं जो मुरदास, तुलसीदास और  
विद्यापति की कविताओं में मिलती है। परन्तु वह तक विशुद्ध नृपि-हृदय और  
नैतिक प्रतिभा का प्रदर्शन है। वह मीरों इन कवियों में किसी प्रकार फलकी  
नहीं टट्टती। मीरों का सांख्यिक मूल्य नृप और तुलसी के नमनक्ष कदापि  
नहीं है क्योंकि उन्होंने सन्तान की भाँति अथाह और अतीव गन्-रागर का  
अन्तर्गत नहीं किया और न 'गमचरित-मानस' की भाँति निष्कलुष पवित्र  
मानस की रचना की। परन्तु गिरिधर से उन्होंने वाली निर्मल निर्कारिणी के  
मन्त्रों प्रयाग और कल्याण शब्द में यदि कोई सौन्दर्य है तो मीरों के पदों  
में ही सौन्दर्य केतल है।